टॉफी

लाल्टू

उन दिनों जहाँ हम रहते थे, अब वहाँ एक बहुमंज़िला इमारत है। बांग्ला में उस तरह के इलाके को 'बस्ती' कहते हैं। बस्ती का मतलब झुग्गी झोंपड़ियों वाला इलाका-सा होता है, हालाँकि हमारी उस बस्ती में पक्के मकान थे। हमारे घर में दो कमरे थे। एक कमरे में एक कोने में रसोई का इन्तज़ाम था। कोई दस परिवारों के लिए चार पाखाने थे। दो पानी के नल, जिनमें दो बार, सुबह-शाम पानी आता और पानी के लिए झगड़ा होता।

बापू यानी पिता जी सुबह-सुबह उठते; मुझे भी उठा देते। जल्दी-जल्दी नित्य-कर्म करने के बाद दोनों मिलकर नाश्ता तैयार करते। पिता जी स्टोव जलाते और मैं टीन से

आटा थाली में डालता, जब तक चाय का पानी गर्म होता, पिता जी जल्दी-से आटा गूँथ लेते। मेरे लिए दूध गर्म करके, उसी में से एक-दो चम्मच अपनी चाय में डालकर, फिर चाय पीते-पीते मेरे लिए परांठे सेंकते। खुद कभी खाते, कभी नहीं। फिर पगड़ी जमाने में आधा घण्टा लगा देते।

अधिकतर सुबहों में एक बूढ़ा आदमी एकतारा बजाता हुआ आता और दर-दर जाकर गाता, "हरि की मिश्री घोल मनवा, राम नाम नित बोल।" पिता जी उसे देखते ही डाँटकर कहते, "कभी कुछ काम-धाम भी कर, रोज़ आ जाता है।" फिर उसे एक परांठा दे देते। मुझे ऐसा दिन याद नहीं आता, जब वह आदमी खाली हाथ लौटा हो।

स्कूल अधिक दूर न था। हम पैदल जाते। अकेले जाने की कल्पना भी मैं नहीं कर पाता। जाने किसने मुझे कह दिया था कि स्कूल के सामने से जो सड़क कोयला डीपो की ओर जाती थी, उसके दूसरे छोर पर बाघ और चीते मिलते थे। पिता जी के साथ चलते-चलते कई बार मैं सोचता कि अगर कोई शेर आ ही गया तो वे उसे मार डालेंगे।

स्कूल पहुँचते ही मैं अपनी कक्षा के बच्चों के साथ घुलमिल जाता और पिता जी अपने साथी शिक्षकों के साथ। उनको देखते ही बाकी शिक्षक कहते, "सरदार जी नमस्कार!" यह मुझे बाद में पता चला था कि उनका नाम गुरप्रीत सिंह भले था, लोग उन्हें सरदार जी ही कहते थे, क्योंकि उन दिनों सभी सिखों को सरदार जी ही कहा जाता था।

***

कोलकाता का एक साधारण म्युनिसिपैलिटी स्कूल। निहायत गरीब और साधारण, हिन्दी माध्यम। टिफिन के वक्त बच्चों को दूध, ब्रेड और कभी-कभी फल या मिठाई बँटती। यह सरकारी राहत थी। पिता जी ने कह रखा था कि मैं दूध कभी न पिऊँ और केला सड़ा हो तो न खाऊँ। उनकी इच्छा के खिलाफ दूध पीने या सड़ा केला खाने की हिम्मत मैंने कभी नहीं की।

मुझे यह याद नहीं कि वे क्या पढ़ाते थे। शायद उस स्कूल का हर टीचर हर विषय पढ़ाता था। मेरे प्रति सभी शिक्षकों की अलग कृपा-दृष्टि थी। यह केवल इसलिए नहीं कि मेरे पिता उनके साथी थे, बल्कि इसलिए भी कि माँ का न होना, उनको मेरे जीवन की बहुत बड़ी दुर्घटना लगती थी।

माँ की हल्की-सी याद मन में है। वह कब मेरे जीवन से विलुप्त हो गई, यह मुझे याद नहीं। शायद मुझे कभी बतलाया ही न गया हो कि माँ का चला जाना क्या होता है और मैं उसके न होने का आदी हो गया था। अब मैं जानता हूँ कि मुझे जन्म देकर सत्रह साल की उम्र में ही माँ गुज़र

गई थी। कभी-कभी अचानक ही माँ का चेहरा मुझे दिख जाता है, पर शायद वह उसके एक पीले पड़ गए फोटोग्राफ को देखने की वजह से होगा, जो हमारे सबसे पुराने एलबम के पहले पन्ने पर जड़ा है। फोटोग्राफ में वह इतनी सुन्दर नहीं है, जितनी कल्पना में दिखती है। उसकी शक्ल से भी अधिक उसके स्पर्श की एक अनुभूति मन और शरीर की अनजान प्रक्रियाओं में अचानक ही कभी उभरती है और मैं देर तक सोचता रह जाता हूँ।

स्कूल शायद सुबह सात बजे से दिन बारह बजे तक चलता। भरी दोपहर लौटकर पिता जी फिर एक बार मुझे नहलाकर – जाड़ों में हाथ-पैर धुलाकर – खाना बनाते। बचपन के उन दिनों में खाए खाने का स्वाद अभी तक मेरी जीभ पर है। शायद पिता जी पंजाब से लाए देशी घी का बहुत उपयोग किया करते। साल में एक महीना - आम तौर से गर्मियों में - हम पंजाब जाते। वहाँ अम्बो यानी दादी माँ देशी घी का पीपा तैयार रखतीं। साल भर में एक दस किलो का पीपा हम दोनों मिलकर खत्म करते।

दोपहर में आराम करने के बाद पिता जी ट्यूशन करने निकलते। आम तौर से मैं घर पर ही खेलता रहता या उनकी दी हुई हिदायत के अनुसार पढ़ता-लिखता। कभी-कभार उनके साथ भी चल पड़ता था। अब सोचता हूँ तो लगता है कि कई बच्चों को वे मुफ्त पढ़ाते, पर कुछेक जगहों पर उन्हें दस रुपए के आसपास महीने में मिलता। उनके साथ चलने पर स्टेशन तक मुझे ले जाते और रेलगाड़ी के बारे में समझाते। अवाक नेत्रों से मैं धुँआ छोड़ते उन दानवों को देखता और पिता जी भाप का इंजन और पिस्टन वगैरह के बारे में मुझे बतलाते।

कभी-कभी कुछ बच्चे घर आकर उनसे पढ़ते। शाम होते ही वे चले जाते। शाम को पिता जी अक्सर दारू पी लेते और ज़रा-सी गलती पर मुझे पीटते। कभी-कभी पड़ोसी आकर मुझे छीन ले जाते और बाद में उनके पास सुला जाते। बड़ा अचरज होता है कि उनके पीटने के बावजूद मुझे उन्हीं के पास लेटने में सबसे अधिक सुरक्षा महसूस होती। दूसरे दिनों वे देर रात तक बैठ किताबें पढ़ते रहते।

***

जिस दिन की याद मुझे सबसे अधिक आती है, उस दिन भी उन्होंने दारू पी थी और खूब शोर मचाया था। उस दिन दोपहर को राजकिशोर नाम का एक लड़का घर पर पढ़ने आया था। गर्मी के दिन थे। राजकिशोर को सवाल करवाने में पिता जी परेशान हो रहे थे। अचानक बिजली चली गई। कमरे में एक पंखा था। डी.सी. करेंट से चलता। पंखा बन्द हो जाने से उमस बढ़ गई और पिता जी बार-बार गर्दन हिलाने लगे। एक बार उन्होंने

कहा, "बहुत गर्मी है....पंखा भी बन्द हो गया।" उन्होंने पगड़ी भी उतारकर रख दी थी।

राजकिशोर मुस्करा रहा था। पिता जी झल्ला उठे, "हँसने की क्या बात है रे?"

वह बिना घबराए बोला, "हमारे घर तो पंखा है ही नहीं, सर जी!"

पिता जी थोड़ी देर उसकी ओर देखते रहे और बोले, "जाओ, आज जाओ, कल आ जाना।" उसके चले जाने के बाद भी पिता जी देर तक वहीं बैठे रहे।

उस शाम वे मुझे साथ लेकर किसी के घर गए। ट्राम पर चढ़कर थोड़ी दूर। ट्राम का किराया उन दिनों पाँच पैसे था। कुछ सालों बाद सरकार ने एक पैसा किराया और बढ़ाया तो

शहर भर में दंगे हुए थे। जिस घर में हम पहुँचे, वहाँ भी एक सिख परिवार रहता था। हट्टे-कट्टे कद के एक सज्जन शानदार पगड़ी पहने एक बड़ी कुर्सी पर बैठे थे। पिता जी ने पहुँचते ही कहा, "सत् श्री अकाल!"

मुझे 'सत् श्री अकाल' कहना सिखाया गया था, पर मैं भूल गया था और हाथ जोड़ते ही मुँह से निकलता, "नमस्कार"। मुझे एक चॉकलेट टॉफी दी गई और फिर मेरा होना जैसे वे लोग भूल ही गए। पता नहीं, उस घर में बच्चे थे या नहीं। मैं इधर-उधर रखा सामान, दीवार पर लटका गुरु-नानक की तस्वीर वाला कैलेंडर वगैरह देखता और रुक-रुक कर पिता जी की ओर देखता। कैलेंडर के पन्ने पंखे की हवा में फड़फड़ाते हुए बिखरने की कोशिश करते और कोई अदृश्य हाथ उन्हें वापस संजोता रहता।

***

एक बार उन सज्जन ने - उनका नाम शायद हरभजन सिंह था - कहा, "गुरप्रीत, तू अकेला सरदार होगा सारे बंगाल में, जो इस तरह प्राइमरी के बच्चों को पढ़ाकर जी रहा है। यार, कुछ और कर ले। हमारी टैक्सी चला ले। कुछ कमाके पिण्ड (गाँव) लै जा।"

तभी मैंने पिता जी की ओर देखा। दाढ़ी से ढके गालों के ऊपर उनकी आँखें फीकी होती जा रही थीं। उन्होंने शायद कुछ कहने की कोशिश की, पर अब याद नहीं आता।

फिर हरभजन बोले, "यार, आजकल मिल्ट्री में भर्ती हो रही है। लड़के को गाँव में रख और भर्ती हो जा। जंग कुछ महीनों में खत्म हो जाएगी - तेरी अच्छी नौकरी रह जाएगी।" पिता जी उन दिनों सत्ताईस साल के होंगे। मैंने वर्दी पहने सिख सैनिक देखे थे। मेरे मन में पिता जी को वर्दी पहने देखने की एक तीव्र इच्छा होने लगी।

वह चीन की लड़ाई थी। 1962 की। पिता जी अचानक बोले, "मिल्ट्री का सवाल ही नहीं उठता, दुनिया में कोई मिल्ट्री नहीं होनी चाहिए।"

हालाँकि, यह बड़ी अजीब बात थी, पर मुझे उन पर इतना भरोसा था कि अचानक लगने लगा कि वर्दी पहनने पर आदमी कोयला डीपो के पास रहने वाला बाघ बन जाता है।

हरभजन बोले, "तेरा तो किताबों ने सिर खा लिया है। हर देश की अपनी सेना होनी ज़रूरी है। नहीं तो चीन आज हमला करके यहाँ तक पहुँच जाए।"

पिता जी बोले, "आज ही मेरे पास एक लड़का आया था, इस बड़े शहर में भी उनके घर बिजली नहीं है। उसे क्या फर्क पड़ेगा कि कोई बंगाल आता है या हुनान? इतने लोगों की मौत किसी के भी हित में नहीं है।"

हरभजन उनकी ओर देखते रह गए। फिर अचानक बोले, "तेरा इलाज हमें पता है। अब कई साल हो गए

गुरप्रीत। तू अब फिर से घर बसा। बेटे को भी सही परवरिश मिलेगी।"

पिता जी सिर झुकाए बैठे रहे। कुछ नहीं बोले। थोड़ी देर हरभजन बोलते रहे। फिर औपचारिक बातें कहकर पिता जी उठ पड़े और हम वापस आ गए।

उस साल मुहल्ले में किसी ने दीवाली न मनाई थी। ब्लैक-आउट होता तो मैं पिता जी के साथ चिपका बैठा रहता। उनकी तड़प का एहसास मुझे अभी तक होता है। उन दिनों शहर की रातें सुनसान होती थीं। ब्लैक-आउट से वे और भी भयावह लगतीं।

हरभजन के घर से लौटकर उस दिन उन्होंने फिर दारू पी। पर उस दिन मेरी पिटाई नहीं हुई। पास बुलाकर बड़े प्यार से कहा, "क्यों रे, तुझे वो टॉफी अच्छी लगी थी?"

मैं कहना चाहता था कि वह टॉफी बहुत अच्छी लगी थी, पर उनकी

शक्ल की ओर देखते ही होंठों से निकला था, "नहीं, मैंने वह टॉफी खाई ही नहीं। बाहर फेंक दी।"

उनके चेहरे पर तब मुस्कान आ गई थी। इसके बाद वे चीखने लगे थे।

आज मैं जहाँ रहता हूँ, वहाँ हमारा अपना बाथरूम है। दो कमरों में अलग-अलग पंखे लगे हैं। पिता जी की बहुत बाद की तस्वीर फ्रेम में बँधी एक दीवार पर लगी है। दूरदर्शन पर बोस्निया में चल रही लड़ाई की खबरें सुन रहा हूँ। मेरी पत्नी, जिसका नाम भी गुरप्रीत है, रसोई में पानी भरते हुए मुझसे कह रही है, "इस बार कूलर लगवा ही लो, गर्मी बहुत पड़ रही है।"

कूलर लगना ही चाहिए, सोचते हुए गर्दन मोड़ते ही चौंक उठता हूँ। दीवार के सामने पिता जी खड़े मुस्करा रहे हैं। प्यार से पूछते हैं, "तूने वो टॉफी खाई थी न?"

हरजिन्दर सिंह 'लाल्टू': हिन्दी के प्रतिष्ठित कवि व कहानीकार हैं।

सभी चित्र: हरमन: चित्रकार हैं। दिल्ली कॉलेज ऑफ आर्ट, नई दिल्ली से फाइन आर्ट्स (चित्रकारी) में स्नातक और अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली से विज़ुअल आर्ट्स में स्नातकोत्तर। भटिंडा, पंजाब में रहती हैं।